पाठ संशोधनके नियम

१. प्रस्तुत ग्रंथके पाठ-संशोधनमें ऊपर बतलाई हुई अमरावती, सहारनपुर, कारंजा और आराकी चार हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है। यद्यपि से सब प्रतियां एकही प्रतिकी प्राय: एक ही व्यक्तिद्वारा गत पंद्रह वर्षोंके भीतर की हुई नकलें है, तथापि उनसे पूर्वकी प्रति अलभ्य होनेकी अवस्थामें पाठ संशोधनमें इन चार प्रतियोंसे बहुत सहायता मिली है। कमसे कम उनके मिलानद्वारा भिन्न भिन्न प्रतियोंमे छूटे हुए भिन्न भिन्न पाठ, जो एक मात्रासे लगा कर लगभग सौ शब्दोंतक पाये जाते हैं, उपलब्ध हो गये और इस प्रकार कमसे कम उन सबकी उस एक आदर्श प्रतिका पाठ हमारे सामने आ गया। पाठका विचार करते समय सहारनपुरकी प्रति हमारे सामने नहीं थी, इस कारण उसका जितना उपयोग चाहिये उतना हम नहीं कर सके। केवल उसके जो पाठ-भेद अमरावतीकी हस्त-प्रति पर अंकित कर लिये गये थे, उन्हींसे लाभ उठाया गया है । जहां पर अन्य सब प्रतियोंसे इसका पाठ भिन्न पाया गया वहां इसीको प्रामाण्य दिया गया है। ऐसे स्थल परिशिष्टमे दी हुई प्रति-मिलान्की तालिकाके देखनेसे ज्ञात हो जावेंगे। प्रति-प्रामाण्यके विना पाठ-परिवर्तन केवल ऐसे ही स्थानोंपर किया गया है जहां वह विषय और व्याकरणको देखते हुये नितान्त आवश्यक जंचा। फिर भी वहां पर कमसे कम परिवर्तनद्वारा काम चलाया गया है।

२. जहां पर प्रतियोंके पाठ-मिलानमात्रसे शुध्द पाठ नहीं मिल सका वहां पहले यह विचार किया गया है कि क्या कनाडीसे नागरी लिपि करनेंमे कोई दृष्टि-दोषजन्य भ्रम वहां संभव है ? ऐसे विचारद्वारा हम निम्न प्रकारके संशोधन कर सके

(अ) प्राचीन कनाडीमैं प्राकृत लिखते समय अनुस्वार और वर्ण-द्वित्व-बोधक संकेत एक बिन्दु ही होता है, भेद केवल इतना है कि अनुस्वारका बिन्दु कुछ छोटा (०) और द्वित्वका कुछ बडा (**O**) होता है। फिर अनुस्वार का बिन्दु वर्णसे पश्चात् और द्वित्वका वर्णसे पूर्व रखा जाता है। अतएव लिपिकार द्वित्वको अनुस्वार और अनुस्वारको द्वित्व भी पढ सकता है। उदाहरणार्थ, प्रो०

पाठकने अपने एक लेखमें* त्रिलोकसारकी कनाडी ताडपत्र प्रति परसे कुछ नागरीमें गाथाएं उद्धृत की हैं जिनमेंसे एक यहां देते हैं-

सो उ०म०गाहिमुहो चउ०मुहो सदरि-वास-परमाऊ ।
चालीस र०जओ जिदभूमि पु० छइ स-मंति-गणं ।।

इसका शुध्दरुप है -

सो उम्मग्गाहिमुहो चउम्मुहो सदरि-वास-परमाऊ ।
चालीस-रज्जओ जिदभूमि पुच्छइ स-मंति-गणं ।।

ऐसे भ्रमकी संभवता ध्यानमें रखकर निम्न प्रकारके पाठ सुधार लिये गये हैं -

- अनुस्वारके स्थान पर अगले वर्णका द्वित्व -

अंगं गिज्झा-अंगग्गिज्झा (पृ. ६) ; लक्खणं खइणो - लक्खणक्खइणो (पृ. १६)

संबंध - संबध्द (पृ. २६, २९४,) वंस - वस्स (पृ. १११) आदि ।

(२) द्वित्वके स्थानपर अनुस्वार -

भग्ग - भंग (पृ. ५०) अक्कुलेसर-अंकुलेसर (पृ. ७२) कक्ख-कंखा (पृ. ७४) समिइवइस्सया दंतं-समिइवइं सया दंतं (पृ. ७) सव्वेयणी-संवेयणी (पृ. १०५) ओरालिय त्ति ओरालियं ति (पृ. २९३) पावग्गालिय-पावं गालिय (पृ. ४९) पडिमव्वा -पडिमं वा (पृ. ५९) इत्यादि।

Bhandarkar commemoration Vol., 1917, P.221.

(आ) कनाडीमें द और ध प्राय: एकसे ही लिखे जाते हैं जिससे एक दूसरेमें भ्रम हो सकता है।

द-ध, दरिद-धरिद (पृ. ३०) ध-द, ड्डविध-ड्डविद (पृ. २१) हरधणु-हरदणु (पृ. २७५) इत्यादि।

(इ) कनाडीमें थ और ध में अन्तर केवल वर्णके मध्यमें एक बिंदुके रहने न रहनेका है, अतएव इनके लिखने पढनेमें भ्रान्ति हो सकती है। अंत: कथं के स्थानपर कधं और इसको तथा पूर्वोक्त अनुस्वार द्वित्व-विभ्रमको ध्यानमें रखकर संबंधोवा के स्थान पर सव्वत्थोवा कर दिये गये हैं।

यद्यपि शौरसेनीके नियमानुसार कथं आदिमें थ के स्थान पर ध ही रक्खा है, किन्तु जहां ध करनेसे किसी अन्य शब्दसे भ्रम होनेकी संभावना हुई वहां थ ही रहने दिया। उदाहरणार्थ- किसी किसी प्रतिमें 'गंथो' के स्थान पर 'गंधो' भी है किंतु हमने 'गंथो' ही रक्खा है।

(ई) -ह्रस्व और दीर्घ स्वरोंमें बहुत व्यत्यय पाया जाता है, विशेषत: प्राकृत रुपोंमें। इसका कारण यही जान पडता है कि प्राचीन कनाडी लिपिमें -ह्रस्व और दीर्घका कोई भेद ही नहीं किया जाता। अत: संशोधनमें -ह्रस्वत्व और दीर्घत्व व्याकरणके नियमानुसार रक्खा गया है।

(उ) प्राचीन कनाडी ग्रंथोंमें बहुधा आदि ल के स्थान पर अ लिखा मिलता है जैसा कि प्रो. उपाध्येने परमात्मप्रकाशकी भूमिकामें (पृ. ८३ पर) कहा है । हमें भी पृ. ३२८ की अवतरण गाथा नं. १६९ में ' अहइ ' के स्थान पर ' लहइ ' करना पडा।

३. प्रतियोंमें न और ण के द्वित्वको छोडकर शेष पंचमाक्षरोंमें हलंत रुप नहीं पाये जाते। किंतु यहां
संशोधित संस्कृतमें पंचमाक्षर यथास्थान रक्खे गये हैं ।

४. प और य में प्राचीन कनाडी तथा वर्तमान नागरी लिपिमें बहुधा भ्रम पाया जाता है। यही बात हमारी प्रतियोंमे भी पाई गई। अत: संशोधनमें वे दोनों यथास्थान रक्खे गये हैं।